National Journal of Advanced Research
www.nationaljournals.com
ISSN: 2455-216X
Received: 05-01-2026, Accepted: 04-02-2026, Published: 19-02-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 35-38

बाह्य ऋण और सहायता के प्रकार: एक विस्तृत अध्ययन

ज्ञानेन्द्र सिंह, डॉ. गीता सिंह
Department of Economics, J.S.University, Shikohabad, Uttar Pradesh, Inida

सारांष
जैसा कि पूर्व में हमने देखा कि विदेषी सहयोग या तो रियायती सहायता के रूप में प्राप्त होती है अथवा गैर रियायती सहायता या विदेशी निवेश के रूप में प्राप्त होती है रियायती सहायता या विदेशी निवेश के रूप में प्राप्त होती है।रियायती सहायता में अनुदान और कम ब्याजदरों व लम्बी भुगतान अवधि वाले ऋण सम्मिलित होते है।
प्रो0 नर्कसे ने अपनी पुस्तक "The Problem of Capital formation in Undeveloped countries" में विदेषी सहयोग के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये है। प्रो0 नर्कसे का कहना है कि भूतकाल में विकासशील देशों में अर्थिक विकास को गतिशील बनाने में विदेषी सहयोग का बहुत कम हाथ रहा है और जो भी विदेशी सहातया आयी है, वह प्राथमिक उत्पादन तक ही सीमित रही है, किन्तु नर्कसे का मत है कि उपर्युक्त सहायता का प्रवाह, औद्योगिक रूप से विकसित देशों को सचेत नियोजन का परिणाम नही था अर्थात् यह उन्होंने पिछड़े देशों की मदद के लिए नहीं किया थावरन् यह तो निजी लाभ के उद्देश्य से किया था।
भारत की राष्ट्रीय नीति ने विदेशी सहयोग की आवश्यकता को स्वीकार तो किया, लेकिन इसे सीमित भूमिका देने का निर्णय लिया। इसी कारण विदेषी सहयोग को अधिकतम 49 प्रतिशत इक्विटी हिस्सेदारी तक सीमित रखा गया, जबकि भारतीय साझेदारों को प्रमुख हिस्सेदारी रखने की अनुमति दी गई। इसके अलावा विदेशी कंपनियों को केवल प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में ही प्रवेश की अनुमति प्रदान की गई।समग्र रूप से देखा जाए तो विदेशी सहयोग को लेकर भारत की नीति नियंत्रित, प्रतिबंधात्मक और चयनात्मक रही

मूलशब्द: विदेषी सहयोग, नीति नियंत्रित, प्रतिबंधात्मक, चयनात्मक

भूमिका
अंतरराष्ट्रीय ऋण एवं सहायता को हम निम्नलिखित बिन्दु के अन्तर्गत स्पष्ट कर सकते है। वे बिंदु है–

- विदेषी सहयोग का स्वरूप
- अनुदान एवं ऋण
- द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय सहायता
- व्यापार असन्तुलन
- परिपक्वता की अवधि
- विदेषी सहयोग की शर्तें
- ऋण सेवा की समस्या
- पुनर्भुगतान की विधि
- तकनीकी परिवर्तन एवं तकनीकी विकास

अब उपर्युक्त बिन्दुओं का क्रमवार विश्लेषण करने का प्रयास किया जा रहा है।

Form of External Aid
विदेषी सहयोग को सामान्यत: दो मुख्य रूपों में देखा जाता है। रियायती सहायता तथा गैररियायती सहायता।
रियायती सहायता या तो द्विपक्षीय होती है यानि एक सरकार से दूसरी सरकार को या तो बहुपक्षीय होती है यानि की विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था जैसे संगठनों से प्राप्त होती है। अंतरराष्ट्रीय ऋणों को प्राय विदेशी मुद्रा लौटाना होता है, कभी–कभी ऋणदाता देश, ऋणी देश को यह सुविधा भी प्रदान कर देता है कि वह ऋण का भुगतान विदेशीमुद्रा के बजाय अपनी स्थानीय मुद्रा में कर सके। उदाहरणस्वरूप, पी.एल.–480 कार्यक्रम के अंतर्गत अमेरिका ने भारत को जो सहायता दी थी, उसके बदले भारत को रुपए में भुगतान की अनुमति दी गई थी। अनुदानों के मामले में भुगतान नहीं करना पड़ता और ये आमतौर पर किसी अस्थायी संकट से निपटने हेतु दिए जाते हैं।
गैर–रियायती सहायता में मुख्य रूप से विदेशी वाणिज्यिक ऋण, अन्य सरकारों तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से बाजार ब्याज दर पर प्राप्त ऋण, और अनिवासी भारतीयों से प्राप्त जमा राशि शामिल होती है। विदेशी निवेश प्रायः घरेलू अर्थव्यवस्था के विशिष्ट क्षेत्रों में किया जाता है। इस प्रकार की सहायता का प्रमुख लाभ यह है कि विदेशी निवेशक पूंजी के साथ–साथ तकनीकी ज्ञान, मशीनें और पूंजीगत वस्तुएँ भी उपलब्ध कराते हैं, जिनकी कमी विकासशील देशों में सामान्यतः देखी जाती है।
हालाँकि, विदेशी निवेश की एक बड़ी हानि यह है कि अर्जित लाभ का बड़ा हिस्सा विदेशी निवेशकों को देना पड़ता है, जिससे काफी मात्रा में विदेशी मुद्रा देश से बाहर चली जाती है। इसके अतिरिक्त, विदेशों पर अत्यधिक निर्भरता घरेलू अर्थव्यवस्था में अनावश्यक बाहरी हस्तक्षेप की आशंका बढ़ा देती है, जो देश के दीर्घकालिक हितों के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता।
विदेषी सहयोग को उसके स्वभाव, स्रोत, शर्तों एवं दशाओं के आधार पर तीन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यथा–

1. ऋण सहायता
2. टनुदान सहायता तथा
3. पी.एल.480/665 इत्यादि के अन्तर्गत मिलने वाली सहायता।[3]

अनुदान एवं ऋण
Grants and Debts
टनुदान अंग्रेजी के ग्राण्ट शब्द का पर्याय शब्द है। कुछ सेवाओं जैसे पुलिस, सड़क आदि में आनी वाली लागत को प्राप्त करने हेतु केन्द्रीय सरकार स्थानीय अधिकारियों को ग्राण्ट स्वीकृत कर सहायता करती है।[4] जबकि ऋणी व्यक्ति द्वारा ऋणदाता को देय होती है। ऋण एक व्यक्ति अथवा संगठन से सम्बन्धित हो सकता है।[5]
थ्जन ऋणों परब्याज की दर अधिक होने और परिपक्वता की अवधि कम होने के साथ–साथ छूट की अवधि भी कम होती है, उन्हें कठिन ऋण की संज्ञा दी जाती है। यदि ऋण को स्थानीय मुद्रा में लौटाना है, तो ऐसी स्थिति में भी यह ऋण आसान श्रेणी में रखा जा सकता है।

अंतरराष्ट्रीय ऋण अल्पकाल में विकास योजनाओं को पूरा करने में तो सहायक होते हैं, लेकिन यदि विदेशी पूंजी का सही और प्रभावी उपयोग न किया जाए, तो दीर्घकाल में इन ऋणों के सेवा–प्रभार (ब्याज व किस्तों) के कारण अर्थ व्यवस्था पर भारी बोझ पड़ सकताहै। इसके विपरीत, अनुदान के रूप में मिलने वाली सहायता अधिक लाभदायक मानी जाती है क्यों कि इसमें भुगतान का दायित्व नहीं होता।

1991–92 तक पी. एल.–480 कार्यक्रम के अंतर्गत प्राप्त होने वाली अमेरिकी सहायता का अधिकांश हिस्सा भारत को रुपये में ही वापस करना निर्धारित था लेकिन इसके बाद इन ऋणों में लगातार कमी हुई। 1994–95 के बाद पी.एल. 480 की व्यवस्था के अन्तर्गत अमेरिका में परिवर्तनशील मुद्राओं में अदा करने वाले ऋण दिये। 2001–2002 के बाद इस प्रकार के ऋणमिलने बंद हो गये।

1991–92 के अन्त तक कुल 13056 करोड़ रू. की विदेषी सहयोग स्वीकृत थी जिसमें ऋणों का हिस्सा 9665 करोड़ रू. अर्थात 74 प्रतिशत, अनुदान का हिस्सा 753 करोड़ रू. अर्थात 6 प्रतिशत तथा पी.एल. 480/665 के अधीन सहायता का हिस्सा 2638 करोड़ रू. था।[6]

2006–07[7]में सम्पूर्ण अवधि पर विचार किया जाए तो भारत को कुल विदेषी सहयोग 382072 करोड़ रू. थी जिसमें ऋणों का हिस्सा 340495 करोड़ रू. थी जिसमें ऋणों का हिस्सा 340495 करोड़ रू. (89.1 प्रतिशत) तथा अनुदानों का हिस्सा 38803 करोड़ रू. (10.2 प्रतिशत) था। शेष के 2744 करोड़ रू. (0.7 प्रतिशत) पी.एल. 480/665 के अधीन प्राप्त सहायता थी। इसी प्रकार 2007–12 की अवधि में कुल विदेषी सहयोग 2,01,512.2 करोड़ रू. ऋण के रूप में तथा 9,126.5 करोड़ रू. अनुदान के रूप में प्राप्त हुई और 2012–16 की अवधि में 1,94236.3 करोड़ प्राप्त हुई, जिसमें से 1,92076.5 ऋण के रूप म तथा 2,159.8 करोड़ रू. अनुदान के रूप में प्राप्त हुई।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में ऋणों एवं अनुदानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

द्विपक्षीय एवंबहुपक्षीय सहायता
Bilateral and Multi-Lateral Aid

सामान्यतः देखा जाए तो दो मुख्य प्रकार के स्रोतों से विदेषी सहयोग का संचालन होता है।वे दो रूपहैं–

1. द्विपक्षीय सहायता तथा
2. बहुपक्षीय सहायता।

जो सहायता एक सरकार से दूसरी सरकार को प्रत्यक्ष रूप से दी जाती है, उसे द्विपक्षीय सहायता की संज्ञा दी जाती है, जबकि बहुपक्षीय सहायता अन्तर्राष्ट्रीय विकास संगठन आदि तथा तेल एवं पेट्रोलियम निर्यातक देशों द्वारा संचालित की जाती है।

वर्तमान समय में बहुपक्षीय संस्थाएं सहायता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। शुद्ध आर्थिक परिप्रेक्ष्य में समस्त सहायता को बहुपक्षीय संस्थाओं द्वारा ही संचालित किया जाना चाहिए जिससे सहायता के अन्तर्गत उपस्थित होने वाली समस्याओं का निराकरण किया जा सकें।परन्तु वास्तव में ऐसा नही हो पा रहा है।

विश्व की 90 प्रतिशत सहायता द्विपक्षीय सहायता के रूप में आ रही है। मात्र 10 प्रतिशत सहायता बहुपक्षीय संस्थाओं द्वारा संचालित हो रही है।

बहुपक्षीय सहायता कई दृष्टियों से बहुत उपयोगी होती है उदाहरण के लिए इसके अन्तर्गत ऋण प्राप्तकर्ता देश को प्रायः किसी प्रकार की शिकायत नही करनी पड़ती यह बात अलग है कि इस प्रकार की संस्थाओं से सहायता प्राप्त करना कठिन हो गयाहै। इस प्रकार की संस्थाओं से जो सहायता मिलती है वह प्रायः अबाद्ध सहायता के रूप में होती है।

ऋण प्राप्तकर्ता देश के ऊपर किसी प्रकार का राजनैतिक दबाव नही होता और राष्ट्रीय राजनीति स्वयं ही निर्बाध गति से संचालित होती रहती है। जबकि द्विपक्षीय सहायता में ऐसा सम्भव नही होता। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं जैसे–विश्वबैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संगठन आदि ऐसी संस्थाएं है जो राजनैतिक रूप से निष्पक्ष भूमिका निभाने का प्रयत्न करती है और विशेष रूप से ऋण प्राप्तकर्ता देश की समस्याओं के निराकरण के लिए उपाय भी प्रस्तुत करती है।

यदि अंतरराष्ट्रीय ऋण का विश्लेषण किया जाए, तो पाया जाता है कि वर्ष 2013–14 में विदेषी सहयोग कुल अंतरराष्ट्रीय ऋण का 17.7 प्रतिशत थी, जिसमें बहुपक्षीय सहायता 12.1 प्रतिशत और द्विपक्षीय सहायता 5.6 प्रतिशत रही । वाणिज्यिक उधार की राशिभलेही 1990–91 में 19,727 करोड़ रुपये से बढ़कर 2013–14 में 8,80,740 करोड़ रुपये तक पहुँच गई हो, परंतु कुल अंतरराष्ट्रीय ऋण में इसकी हिस्सेदारी 12 से 33.2 प्रतिशत के बीच ही बनी रही। यह ध्यानदेने योग्य है कि वाणिज्यिक उधार पर आमतौर पर उच्च ब्याज देना पड़ता है, जिसके कारण ऋण सेवा–भार भी बढ़ जाता है।

टनिवासी भारतीयों से प्राप्त जमा राशि पर भी यही स्थिति लागू होती है, क्योंकि विकसित देशों में ब्याज दरें कम होने के कारण वे भारत में अधिक ब्याज दर का लाभ उठाना चाहते हैं। रुपये में प्राप्त ऋण 1991–92 में 25,199 करोड़ रुपये था, जो 2014–15 में घटकर 8,826 करोड़ रुपये रह गया। इस प्रकार यह अनुपात उसी अवधि में 15.5 प्रतिशत से घटकर मात्र 0.3 प्रतिशत रह गया।[8]

व्यापार असन्तुलन
Imbalance of Trade

"व्यापार असन्तुलन" आमतौर पर व्यापार सन्तुलन का विपरीत है। वाणिज्य कोष में व्यापार सन्तुलन की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि यह केवल एक देश की निर्यात वस्तुओं और आयात वस्तुओं के मूल्यों का विस्तृत विवरण है, जिसे व्यापार शेष भी कहा जाता है। इसलिए व्यापार सन्तुलन केवल आयात–निर्यात की वस्तुओं को शामिल करताहै। राष्ट्रीय भुगतान सन्तुलन का सबसे महत्वपूण ंहिस्सा व्यापार सन्तुलन है। व्यापार सन्तुलन अच्छा होगा यदि आयातों पर किया गया खर्च निर्यातों पर किया गया खर्च से अधिक है, लेकिन विपरीत होगा। 9. भारतमें योजना काल में असंतुलित व्यापार की समस्या बनी रही है, और अर्थशास्त्रियों ने अनुमान लगाया है कि असंतुलन कुछ वर्षों तक रहने वाला है। व्यापार असन्तुलन की स्थिति अचानक नहीं हुई, बल्कि इसके पीछे बलिष्ठ कारण हैं, जैसे–

- मशीनों व पूंजीगत वस्तुओं के आयात में बढ़ोतरी
- आशा के अनुरूप निर्यात व्यापार में बढ़ोतरी न होना
- खाद्यानो एवं कृषि पदार्थो का व्यापक स्तर पर आयात
- सुरक्षा सामग्री का भारी मात्रा में आयात।

व्यापार असन्तुलन की समस्या से निपटने के उद्देश्य से विभिन्न कदम उठाये गये है, जिनमें से मुख्य इस प्रकार है–

- निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन
- आयातों को प्रतिस्थापन
- मुद्रा का अवमूल्यन
- आयातों पर प्रतिबन्ध
- विभिन्न व्यापारिक समझौते[10] इत्यादि।

आलोच्यकाल में व्यापारिक असन्तुलन की स्थिति का अवलोकन हेतु अग्रलिखित तालिका पर दृष्टिपात करते है–

तालिका 4.1 : भारत में व्यापार असन्तुलन की स्थिति (1991 से 2015) (धनराशि मिलियन डालर में)

क्रमांक	सम्बन्धितवर्ष	व्यापारअसन्तुलन
1.	1991–92	–5.899
2.	1993–94	–4056
3.	1994–95	–9049
4.	1995–96	–11359
5.	1996–97	–14815
6.	1997–98	–15507
7.	1998–99	–13246
8.	1999–2000	–17841
9.	2000–01	–12460
10.	2001–02	–11574
11.	2002–03	–10690
12.	2003–04	–13718
13.	2004–05	–33702
14.	2005–06	51904
15.	2006–07	63117
16.	2010–11	–1,18,633
17.	2014–15	–1,37,014
18.	2015–16	–1,18,459

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत का व्यापार असन्तुलन भय उत्पन्न करने वाला रहा है। 1993–94 में आयात–निर्यात अन्तर (घाटा) 4056 मिलियन डालर था।जो 1994–95 में बढ़कर 9049 मिलियन डालर हो गया।

1991–92 से व्यापार असन्तुलन निरन्तर बढ़ते हुए 2004–05 तक जारी रहा और 2006–07 में यह 63,117 मिलियन डालर तथा 2014–15 में 1,37,014 तथा 2015–16 में 1,18,459 मिलियन डालर हो गया। इस प्रकार हम कह सकते है कि व्यापार असन्तुलन की स्थिति परिवर्तित होकर अनुकूल नही दिखाई दी। व्यापार असन्तुलन की स्थिति लम्बे समय तक बनी रहना किसी अल्पविकसित राष्ट्र के आर्थिक में : दण्ड को नीचे गिराता है, अपितु उसे तोड़ भी सकताहै।

ऋणसेवा की समस्या
Difficulties of Debt

विदेषी सहयोग के प्रयोग में विकासशील देश कई तरह की ऊहापोह की स्थिति का सामना करना पड़ता है। विदेषी सहयोग का प्रवाह संसाधनों के रूपमें एक देश से दूसरे देश में होता है, परन्तु उनका पुनर्भुगतान अधिकांशतः विदेशी मुद्रा में करना पड़ता है। यद्यपि यह समस्या सार्वभौमिकहै, परन्तु फिर भी विकासशील देश अपनी जनसंख्या समस्या के कारण अपने संसाधनों की तुलना में कम राष्ट्रीय आय वालेदेशों के लिए यह समस्या और जटिल हो जाती है। इस सन्दर्भ में इन देशों की समस्याओं का अध्ययन करते समय पियर्सन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में यह उद्घोषित किया कि विकासशील देश जो भारी ऋणों के बोझ से दबे हुए है, जिनके विकास की गति अत्यन्त धीमी है और वे उन देशों की तुलना में जिनके आय का स्तर काफी ऊंचा है, अधिक समस्याओं का सामना कर रहें है, लेकिन वे विदेशी विनिमय के समान समस्याओं का सामना करतें है इसलिए वे अपनी वास्तविक आय में बढ़ोतरी के तुरन्त प्रभावकारी होने वाले प्रभावों को अर्थव्यवस्था में ले आने के लिए इच्छुक रहते है। ऐसे देशों में व्यक्त भयंकर गरीबी और उससे उत्पन्न संस्थानात्मक दुष्प्रभावों के कारण वे असहाय हो जाते है।परिणामस्वरूप वे बहुत शीघ्र अपनी घरेलू बचत में बढ़ोतरी करने में अधिक कठिनाइयों का अनुभव करते है।[12] वर्तमान में ऋण सेवा एक जटिल समस्या का रूप लेती जा रहीहै। इस तथ्य की पुष्टिअग्र–तालिका के आधारपर की जा सकती है–

तालिका 4.2 : भारत के अंतरराष्ट्रीय ऋणों की स्थिति(1991 से 2015 तक) (करोड़ रूपये में)

क्रमांक	वर्ष	कुलऋणसेवाभार
1.	1991 से 1992	10,938
2.	1993 से 1996	53,536
3.	1997 से 2001	74,635
4.	2002 से 2006	1,02,607
5.	2007 से 2008	13,320
6.	2008 से 2009	15,939
7.	2009 से 2010	16,523
8.	2010 से 2011	16,615
9.	2011 से 2012	19,306
10.	2012 से 2013	23,072
11.	2013 से 2014	24,102
12.	2014 से 2015	24,163 लगभग

Source: Completed and Computed from RBI, Handbook of Statistics of Indian Economy (2014-15)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 1991–92 में भारत पर कुल ऋण सेवाभार 10.938 करोड़ रूपये था और एक दशक पश्चात् 2001 में इसमें बढ़ोतरी होकर 74,635 करोड़ रू. हो गया। परन्तु इसके पश्चात ऋण की मात्रा में आशातीत बढ़ोतरी होती गयी और वर्ष 2014–15 में यह लगभग 24,163 करोड़ रू. तक पहुंच गया।

ऋण का भार लेते समय भारत को उन देशो से संधिया करनी चाहिए जो ब्याज की कम दर लेनी स्वीकार करें और ऋण भुगतान को सुविधा जनक बनाने के लिए अपने व्यापार में उदारता की नीति अपनाने के लिए तैया रहो।दूसरे विदेषी सहयोग की मात्रा में उत्तरोत्तर काल में कम करनी चाहिए।

यह भंयकर बढ़ोतरी भारतीय अर्थव्यवस्था को कमजोर करने वाली स्थिति प्रकट कर सकती है। अतः ऋण लेने–देने में सरकार को पर्याप्त रूप से सजगता का परिचय देना अर्थव्यवस्था और समाज दोनों के लिए हितकर होगा।

ऋणसेवा के क्षेत्र में कुछ समस्याएँ भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराती देखी जा सकती है। जनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं–

1. विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय एवं प्रतिव्यक्ति आय का कम होना।
2. आयातों की तुलना में निर्यातों की कमजोर स्थिति।
3. कठिन ऋणों की भरमार।
4. ऋण भार का बढ़ता दबाव एवं ऋण सेवाओं के भुगतान की समस्या[13] आदि।

इस प्रकार हम देख सकते है कि ऋण सेवाओं के क्षेत्र में विभन्न प्रकार की समस्याएँ आड़े आती है।

पुनर्भुगतान की विधि
Method of Repayments

पुनर्भुगतान की विधि में दो तत्व सम्मिलित देखे जा सकते है। जो इस प्रकारहै–

1. कठिन पुनर्भुगतान की विधि और
2. उदार पुनर्भुगतान की विधि।

जिन ऋणों का भुगतान विदेशी मुद्रा में करना होताहै, उन्हें कठिन पुनर्भुगतान की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसक विपरीत जिन ऋणों का भुगतान घरेलू मुद्रा में करना होता है, उन्हें उदारपुनर्भुगतान कहा जाता है।

विकासशील देशों को विदेषी सहयोग प्राप्त करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि घरेलू मुद्रा में ही अधिकाधिक भुगतान किया जाए।

भारत में 1992–93 से 1996–97 में ऋण सेवा भार तेजी से बढ़कर 53,536 करोड़ रू. हो गया जिसमें 57 प्रतिशत ऋण परिशोधन और 43 प्रतिशत ब्याज के रूप में थे। 1997–98 से 2001–2002 में परिस्थिति और भी खराब हो गयी। इसके पश्चात् 2002–03 से 2006–07 के दौरान परिस्थिति में और भी गिरावट आयी और ऋण सेवा 102,207 करोड़ रू. हो गयी। वर्ष 2012–13 ऋण सेवाभार 23,072 करोड़ रू. तक पहुँच गया। जिसके फलस्वरूप निवल सेवा मात्र 4,750 करोड़ रू. ही रह गयी जो कुल सहायता का 17.1 प्रतिशत था।इसी कारण अंतरराष्ट्रीय ऋणों को स्वीकार करते समय हमें ऋणों को पुनर्भुगतान की विधियों पर विचार विमर्श करना चाहिए जिसको कि निकट भविष्य में समस्याओं से बचा जा सके।

त्कनीकी परिवर्तन एवं तकनीकी विकास
Technical Change and Technical Development

साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद के परिणामस्वरूप विश्व के तीन चौथाई भाग में गरीबी एवं असमानता में बढ़ोतरी हुई है। साथ ही, इसमें अन्तर्राष्ट्रीय शोध की प्रक्रियाको बल प्रदान किया है। वकासशील देशों के पिछड होने का एक कारण यह भी रहा है कि तकनीकी विकास की प्रक्रिया में काफी पिछड़ेपन के शिकार रहे है। अतः विकासशील देशों को विदेषी सहयोग प्राप्त करते हुए इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि उस सहायता का अधिकाधिक प्रयोग तकनीकी विकास के लिए किया जाए।

भारत को कई रूपों में विदेषी सहयोग प्राप्त होती है, उनमें से तकनीकी सहायता एवं परियोजना सहायता प्रमुख रही है। भारत सहित तीसरी दुनियां के अधिकांश देश तीव्र गति से औद्योगिक विकास करना चाहते थे अतः इन देशों ने भारी मात्रा में तकनीक तथा उससे सम्बन्धित साम्रगी व सहायता का आयात करना पड़ा। इसके लिए उन्हे भारी मात्रा म विदेषी सहयोग भी लेनी पड़ी।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास के कारण सम्पूर्ण विश्व आज एक सीमित दायरे में बंध गया है। अतः दुनियाँ के किसी भी भाग में जब कोई तकनीकी विकास होता है विकासशील देश अपनी उत्पादन प्रक्रिया को मजबूत बनाने के लिए उनकी मांग तीव्रता से करने लगते है। तकनीकी विकास की दौड़ में दुनियां भर के देश एक–दूसरे से प्रतिस्पर्धा के लिए खड़े दिखाई देते है। जिसके फलस्वरूप तकनीकी विकास के क्षेत्र में व्यापक स्तर पर परिवर्तन हो रहा है।

Conclusion

आज यह धारणा मजबूत रूप से स्थापित हो चुकी है कि तीव्र आर्थिक विकास केवल उन्नत तकनीक के सहारे ही संभव है। हालांकि, यह भी उतना ही सत्य है कि विश्व का कोई भी देश सभी उन्नत तकनीकों का विकास केवल अपने भीतर ही कर पाना अत्यंत कठिन है। कुछ देशों को छोड़कर प्रायः सभी देशों को तकनीकी का आयात किसी न किसी रू‍प में करना ही पड़ता है। भारत में भी तकनीकी का व्यापक स्तर पर आयात हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप यह विभिन्न परिवर्तन देखने को मिला है।

अन्तर्राष्ट्रीय तकनीकी हस्तान्तरण मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर करता है।यथा–

1. यह कि तकनीक का आयात करने वाला देश उस तकनीक के प्रयोग की इच्छा रखता हो।
2. यह कि वह तकनीक उस देश में उपलब्ध नही हो
3. यह कि उस देश को विश्वास हो कि उस प्रकार की तकनीक के माध्यम से यह सस्ती दरों पर अपना उत्पादन कर सकेगा।

भारत में विदेशी तकनीक एवं विनियोग से प्रोत्साहित करने वाले प्रमुख उद्योग इस प्रकार है–

1. इंजीनियरिंग उद्योग
2. धातु शोधन उद्योग
3. परिवहन उद्योग
4. औद्योगिक एव ंकृषि मशीनरी उद्योग
5. विद्युत उपकरण आदि।

विकासशील राष्ट्रों की गरीबी बेरोजगारी कम उत्पादकता जैसी समस्याओं के समाधान हेतुविदेशी तकनीक का प्रयोग काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि विदेषी सहयोग विभिन्न रूपों में प्राप्त हो सकती है। यह ऋणके रू‍प में भी हो सकती है और अनुदान के रूप में भी। पक्षों के आधार पर विदेषी सहयोग दो पक्षीय व बहुपक्षीय भी हो सकती है।

इन समस्त पहलुओं पर विचार करने के उपरान्त एक विकासशील देश के लिए यह हितकर होगा कि वह सहायता को अधिकांशतः तकनीकी प्रयोग के उद्देश्य से ग्रहण किया जाए।

संदर्भग्रंथ

1. Dictionary of Economic and Commerce (P.74); Dr. Anupam Agarwal, Upakar Prakashan; BO- Dariyaganj, New Delhi.
2. International Trade and Finance (P-447); Dr. Mishra and others; Sahitya Bhawan Publications, Hospital Road Agra 2016.
3. Bharatiya Arth-Vyavastha (P.624), S. K. Mishra and V. K. Puri, Himalaya Publishing House, Mumbai 4, 20th ed. 2008.
4. Dictionary of Economics and Commerce (P-129) Dr. Anupam Agrawal, Upakar Prakashan, Agra.
5. Dictionary of Economics and Commerce (P-129) Dr. Anupam Agrawal, Upakar Prakashan, Agra.
6. Government of India, Economic Survey, 1991-92 Part II 8-1 P S-93
7. Government of India, Economic Survey 2015-16, Part-III
8. Dictionary of Economic and Commerce (P-24); Dr. Anupam Agarwal; Upakar Prakashan, BO-Dariyaganj, New Delhi-2
9. Industrial Trade and Finance (P-424-25) Dr. J. P. Sharma and others; Sahitya Bhawan Publication, Hospital Road Agra edition-2010.
10. Leading Issues in Agricultural Economic (P-367), R. N. Soni; Vishal Publishing Co-Books Markets, old Railway Road, Jalandhar-144008 (PB), India 7th Reprint ed. 2007.
11. A Report of Pearson Commission, 1988.
12. The Economics of Public Finance (P-187); Philip Tailor, New York.